

### बदलते हुए : 1-2-3

- 8.0 उद्देश्य
- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 हिंदी भाषा का विकास
  - 8.2.1 हिंदी का आदिकाल
  - 8.2.2 हिंदी का मध्यकाल
- 8.3 आधुनिक काल में हिंदी
  - 8.3.1 खड़ी बोली का विकास
  - 8.3.2 19वीं सदी के बाद खड़ी बोली का विकास
- 8.4 हिंदी और उर्दू का परस्पर संबंध
- 8.5 भारतेंदु युग और हिंदी
- 8.6 बीसवीं शताब्दी में हिंदी
- 8.7 सारांश
- 8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

### 8-0 मन्त्रः

---

इस इकाई में हिंदी भाषा की विकास यात्रा और विकास की विविध धाराओं का वर्णन है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अपभ्रंश के बाद हिंदी के विकास को रेखांकित कर सकेंगे;
- खड़ी बोली हिंदी के प्रारंभिक रूप का परिचय दे सकेंगे;
- दकनी (या दक्खिनी) हिंदी के विकास क्रम का निरूपण कर सकेंगे;
- हिंदी की बोलियों के साहित्य और स्वरूप का परिचय दे सकेंगे;
- आधुनिक युग में खड़ी बोली के विकास को विवेचित कर सकेंगे; और
- देश की भाषा के रूप में हिंदी की स्थिति स्पष्ट कर सकेंगे।

---

### 8-1 चर्चा

---

इस इकाई से पूर्व आप संस्कृत भाषा से निकलने वाली पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के विकास के इतिहास का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। अपभ्रंश भाषा की समाप्ति 10वीं शताब्दी के अंत तक हो जाती है और 11वीं शताब्दी के प्रारंभ से हिंदी भाषा के विकास की कहानी आरंभ होती है। 11वीं शती से अपनी यात्रा आरंभ कर आज हिंदी हमारे सामने जिस रूप में आ खड़ी हुई है उससे तो हम लोग परिचित हैं। आज के इस रूप तक पहुँचने में हिंदी की इस यात्रा में जो-जो परिवर्तन हुए हैं उन सबकी चर्चा इस इकाई में की जाएगी। प्रारंभ में हिंदी का वह रूप जो अपभ्रंश से विकसित होकर सामने आया वह प्राकृत, अपभ्रंश की शब्दावली से ओतप्रोत था। धीरे-धीरे हिंदी के इस रूप में विकास हुआ और आगे चलकर उसकी बोलियाँ विकसित हुईं। मुस्लिम शासकों के भारत

में आने के बाद उसमें अरबी-फारसी का पुट आया और हिंदी की एक शैली "उर्दू" के नाम से विकसित हुई। इसके अतिरिक्त इन्हीं मुस्लिम शासकों के दक्षिण भारत में पहुँचने पर वहाँ भी दक्षिण भाषाओं के संपर्क से हिंदी "दक्खिनी हिंदी" के रूप में विकसित हुई। हम इन सभी विकास के सोपानों का विस्तार से इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

हिंदी भाषा के विकास में हिंदी साहित्य का अभूतपूर्व योगदान रहा है। हिंदी भाषा के विकास की हमें दो सरणियाँ दिखाई देती हैं। एक है हिंदी के गद्य साहित्य के विकास की और दूसरी है हिंदी के बोलचाल के स्वरूप की। हिंदी के इन दोनों ही रूपों का किस प्रकार विकास हुआ इस इकाई में इस पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी भाषा को भारतीय संविधान में राजभाषा का दर्जा मिला तथा वह आज विभिन्न प्रयोजनों का सशक्त माध्यम ही नहीं है, बल्कि सारे देश में उसका अस्तित्व संपर्क भाषा के रूप में मान्य हुआ है। इस इकाई में आपको इसकी भी जानकारी दी जाएगी।

## 8-2 fgnht Hkk'kk dk fodkl

अब तक आप पढ़ चुके हैं कि संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश से होता हुआ हिंदी का विकास किस प्रकार हुआ है। अपभ्रंश और हिंदी के मध्य भी एक भाषा की स्थिति बताई जाती है। जिसे विद्वानों ने अवहट्ट की संज्ञा प्रदान की है। इसी को कुछ लोग प्राचीन हिंदी भी कहते हैं। वस्तुतः यह माना जाता है कि 1000 ई. के आसपास प्रयाग तथा काशी तक बोली जाने वाली शौरसेनी और मागधी अपभ्रंशों से ही हिंदी तथा उसके सभी रूपों का जन्म हुआ है। प्राचीन हिंदी पर प्राकृत तथा अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। 16वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते हिंदी से प्राकृत-अपभ्रंश के प्रभाव तो समाप्त हो जाते हैं, पर अब उसकी अपनी प्रमुख बोलियों के साथ एक ऐसा रूप भी खड़ा हो जाता है जो अरबी-फारसी की शब्दावली से युक्त है। 19वीं शताब्दी में भारत की राजसत्ता में फिर परिवर्तन होता है। अंग्रेजी राज की स्थापना होती है और यहाँ से समुचित ढंग से खड़ी बोली हिंदी का विकास आरंभ होता है।

इस प्रकार हिंदी भाषा के विकास की कहानी 1000 ई. के आसपास शुरू होती है। हम इन लगभग 1000 वर्षों के इतिहास का अध्ययन निम्नलिखित तीन चरणों में विभाजित कर करेंगे –

- 1) हिंदी का आदिकाल (1000 ई. से 1500 ई. तक)
- 2) हिंदी का मध्यकाल (1500 ई. से 1800 ई. तक)
- 3) हिंदी का आधुनिक काल (1800 ई. से आज तक)

यहाँ एक बात हम अवश्य कहना चाहेंगे कि आरंभिक हिंदी भाषा का स्वरूप समझने के लिए हमें उस समय के साहित्य को ही आधार बनाना होगा और तब हमें हिंदी भाषा का आदिकाल भी वही मानना होगा जो हिंदी साहित्य के इतिहास का आदिकाल है।

### 8-2-1 fgnht dk vlfndky

आदिकाल के पाँच सौ वर्षों में प्राचीन हिंदी के अनेक रूप सामने आ गए। इन्हीं रूपों में से एक रूप "डिंगल" कहलाया। "डिंगल" हिंदी का वह रूप है जिसका संबंध राजस्थानी साहित्य से है। डिंगल साहित्य की दो प्रमुख रचनाओं का उल्लेख

इतिहासकारों ने किया है। एक है – श्रीधर कृत “रणमल छंद” (1400ई. के आसपास) तथा कल्लोल कवि द्वारा रचित “ढोला मारुरा दूहा” (1473ई.)। हिंदी भाषा का एक दूसरा रूप विकसित हुआ जिसका नाम “पिंगल” पड़ा। पिंगल वस्तुतः मध्य देश की साहित्यिक ब्रजभाषा का नाम था। इस काल में हिंदी का एक तीसरा रूप और उपलब्ध होता है जिसे कुछ विद्वानों ने “हिन्दवी” की संज्ञा दी है। हिंदी का यह रूप हमें तेरहवीं शताब्दी के आसपास अमीर खुसरो के साहित्य में दिखाई देता है। यह भाषा डिंगल या अपभ्रंश मिश्रित भाषा के रूप से भिन्न है। वास्तव में यह भाषा का वह रूप है जो जनसामान्य के बीच उस समय प्रचलित रहा होगा।

आदिकालीन हिंदी साहित्य के विकास में उस समय उपलब्ध धार्मिक साहित्य – जैन, बौद्ध, नाथ, सिद्ध आदि का बड़ा योगदान है। जैन साहित्य की भाषा हिंदी के आदिकालीन स्वरूप का परिचय देती है। यह भाषा अपभ्रंश से प्रभावित है। जैन कवि सोमप्रभ सूरि की कविता का एक उदाहरण देखिए –

रावण जायउ जहि दियहि दह मुंह एक सरीरु।

चिंताविय तइयिय जणणि कवजु पियावएँ खीरु।।

(जिस दिन दस मुँह और एक शरीर वाला रावण पैदा हुआ, उस समय उसकी जननी को यह चिंता हुई कि दूध किसमें पिलाऊँ)

प्राचीन हिंदी के अंतर्गत बौद्ध और सिद्धों की कविताओं की भाषा में पश्चिमी एवं पूर्वी अपभ्रंश के शब्दों का मिला-जुला रूप देखने को मिलता है। बौद्धों की एक शाखा थी वज्रयान। इसी शाखा से संबंधित गोरखनाथ जी ने नाथ पंथ की स्थापना की थी। वास्तव में नाथ पंथ अपने से पूर्व के सिद्ध युग तथा आगामी संत युग के बीच की कड़ी हैं। संत साहित्य के प्रवर्तक कबीर दास पर नाथपंथियों का गहरा प्रभाव था। नाथपंथी एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे और मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे। नाथपंथियों की भाषा प्राचीन पश्चिमी हिंदी की बोलियों के मिश्रित रूप में थी। गोरखनाथ की भाषा का एक उदाहरण देखिए –

हसिबा बोलिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग।

हसिबा बोलिबा गाइबा गीत। ढिढ करि राषि अपना चीत।

(हँसो, खेलो, रँगरेली मनाओ (किंतु) काम-क्रोध का संग कभी न करो। हँसो, खेलो, गीत गाओ (पर) अपने चित्त को दृढ़ करो)

हिंदी के प्राचीन रूप को विकास के चरण की ओर आगे ले जाने में आदिकालीन रासो साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यों तो इतिहासकारों ने अनेक रासो ग्रंथों का उल्लेख किया है परंतु इनमें बीसलदेव रासो तथा पृथ्वीराज रासो विशेष महत्व की रचनाएँ हैं। बीसलदेव रासो की भाषा में डिंगल तथा पिंगल दोनों ही भाषाओं के रूप मिलते हैं परंतु पृथ्वीराज रासो की भाषा में जगह-जगह तरह-तरह के भाषा रूप उपलब्ध होते हैं। कहीं उसमें हिंदी, कहीं राजस्थानी मिश्रित हिंदी, कहीं ब्रजभाषा के रूप, कहीं विकृत अपभ्रंश के रूप दिखाई देते हैं। अधिकांश विद्वानों ने तो उसकी भाषा पिंगल ही बताई है जो ब्रजभाषा का ही प्राचीन रूप है। पृथ्वीराज रासो की भाषा का एक नमूना देखिए –

छत्तियं हथ्य धरंत, नयन्नन चाहिएउ

(पृथ्वीराज की) छाती पर (जैसे ही दासी ने) हाथ रखा, (तो उसने) नेत्र खोलकर (उसकी ओर) देखा।

आदिकालीन साहित्य में जगनिक के आल्हाखंड का भी विशेष स्थान है। जगनिक का समय 1173ई. बताया गया है और माना जाता है कि वे चंदवरदाई के समकालीन थे। हिंदी भाषी प्रदेशों में आल्हा का गान गाँव-गाँव में प्रचलित है। इस ग्रंथ में देश के दो प्रसिद्ध वीरों – आल्हा तथा ऊदल की वीरता तथा उनके युद्धों का वर्णन है। जगनिक की भाषा का एक उदाहरण यहाँ देखा जा सकता है –

पैदल के संग पैदल भिड़िगे और असवारण से असवार।

हौदा के संग हौदा मिल गये, हाथिन अड़ौ दाँते से दाँत।।

पीछे हमने तेरहवीं शताब्दी के आसपास विकसित हिंदी के एक अन्य रूप “हिन्दवी” की चर्चा की थी जिसकी झलक हमें अमीर खुसरो के साहित्य में दिखाई देती है। खुसरो ने मनोरंजन करने वाले साहित्य की रचना की है उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, ढकोसले आदि बड़े लोकप्रिय हुए जिनमें हिंदी के सरल, स्वाभाविक और बोलचाल की भाषा के रूप के दर्शन होते हैं। कुछ उदाहरण आप देख सकते हैं –

दो/सखुन

सितार क्यों न बजा

औरत क्यों न नहाई – परदा न था

पहेली

एक थाल मोती से भरा

सब के सिर पर औँधा धरा।

थाली सब के सिर पर फिरे

मोती उससे एक न गिरे।।

हिंदी ज़बान में रचित लोरिक और चंदा के प्रेम का मसनवी रूप हमें मुल्ला दाऊद के चंदायन नामक ग्रंथ में भी देखने को मिलता है। मुल्ला दाऊद की यह रचना सूफ़ी काव्य परंपरा की पहली रचना मानी जाती है। उक्त काव्य की रचना 14वीं शताब्दी में हो चुकी थी, ऐसा इतिहासकारों ने माना है। चंदायन की भाषा में अवधी, भोजपुरी, ब्रज तथा खड़ी बोली का मिश्रण दिखाई देता है। एक उदाहरण देखिए –

“जेहि हिय चोट लागि सो जानी।

कई लोरिक, कइ चंदा रानी।

सुखी न जान, दुख काहू केरा।

जानइ सोई परई जेहि बेरा।

पेम आँच जेहि हियरे लागइ।

नींद जाइ तपि तपि निसि जागइ।

सात सागर जल बरिसहि आई।

पेम आगि कैसेहुं न बुझाई।”

चौदहवीं शताब्दी में जब मुसलमान शासकों ने दक्षिण भारत पर भी आक्रमण करना आरंभ कर दिया था, तब इन शासकों के साथ मौलवी, व्यापारी आदि भी उत्तर भारत से दक्षिण भारत में गए और इन लोगों के साथ गई वह हिंदी भाषा जो उस समय

राजधानी के आसपास बोली समझी जाती थी। दक्षिण भारत के निवासियों के साथ व्यवहार एवं जन संपर्क के लिए अब एक ऐसा भाषा रूप विकसित होने लगा जिसमें दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्द भी शामिल हो गए। धीरे-धीरे भाषा के इस रूप ने स्थिरता प्राप्त की और यही आगे चलकर “दकिनी” या “दक्खिनी हिंदी” के नाम से जानी गई। यह खड़ी बोली का वह रूप है जिसमें एक ओर ब्रजभाषा तथा फारसी के शब्दों का बाहुल्य है तो दूसरी ओर दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्दों का।

### *8-2-2 fgnh dk e/; dky*

हिंदी के मध्यकाल का समय विद्वानों ने 1500ई से 1800ई तक लगभग 300 वर्षों का निर्धारित किया है। इस समय तक आते-आते अब हमें हिंदी के स्वरूप में स्थिरता के दर्शन होते हैं और वह आत्मनिर्भर होने लगती है। अपभ्रंश के जो रूप प्राचीन हिंदी में चले आए थे वे इस समय तक प्रायः लुप्त हो जाते हैं। हिंदी की तीन प्रमुख बोलियाँ – ब्रज, अवधी और खड़ी बोली भी अब अपना अस्तित्व बना लेती हैं और विकसित अवस्था में दिखाई देती हैं। यद्यपि साहित्य के क्षेत्र में हमें ब्रज तथा अवधी की ही प्रधानता मिलती है पर बोलचाल की भाषा के रूप में खड़ी बोली का वर्चस्व बना रहता है।

उत्तर भारत में इस काल के अधिकांश कवियों ने ब्रजभाषा तथा अवधी को अपने साहित्य की भाषा बनाया। इस काल की महत्वपूर्ण घटना है दक्षिण भारत में जन्मी “भक्ति” का उत्तर भारत में आना। भक्त कवियों ने अपनी स्निग्ध वाणी द्वारा जनता के हृदय में भक्ति का संचार किया। इस दृष्टि से संतों, सूफियों तथा वैष्णव भक्तों का इस क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान रहा है। जायसी, सूर, तुलसी, मीरा और कबीर भक्ति काल के वे चमकते सितारे हैं, जिन्होंने अपनी वाणी द्वारा ब्रज तथा अवधी का परिमार्जन एवं परिष्कार कर संपूर्ण विकास किया। सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक तो अनेक धार्मिक सुधारक जैसे दादू, गुरु गोविंद सिंह, प्राणनाथ आदि भी सामने आ जाते हैं जो अपनी वाणी से एक ओर जनता के मन को शांति पहुंचाते हैं तथा दूसरी ओर हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

जहाँ तक हिंदी के रीतिकालीन साहित्य का प्रश्न है, इस युग के संपूर्ण साहित्य पर प्रधानतः ब्रजभाषा का ही आधिपत्य रहा। यहाँ आकर ब्रजभाषा अपने कलात्मक वैभव को प्राप्त करती है। बिहारी, मतिराम, घनानंद, देव, भूषण आदि रीतिकाल की वे हस्तियाँ हैं जिन्होंने ब्रजभाषा में काव्यकला की दृष्टि से उत्तम साहित्य प्रस्तुत किया।

लेकिन इस काल की एक अन्य साहित्यिक दृष्टि से बड़े ही महत्व की घटना यह है कि हमें इस काल में खड़ी बोली गद्य के विकास का पहला चरण दृष्टिगोचर होता है। डॉ. लक्ष्मीसागर वाष्णय के शब्दों में, “..... खड़ी बोली गद्य के विकास का प्रथम सोपान, जिसका सूत्रपात 1500ई. के लगभग प्रारंभ में किसी अज्ञात कवि द्वारा रचित सूफी काव्य “कुतुबशतक” पर लिखे वार्तिक तिलक, औरंगजेब के लगभग समकालीन स्वामी प्राणनाथ और उनके शिष्यों की रचनाओं में, 1742 में रामप्रसाद निरंजनी के ‘भाषा योग वशिष्ठ’ और 1762 में दौलतराम के जैन पद्मपुराण से होता है।”

इन सबके विषय में आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

---

### *8-3 vk/ud dky ea fgnh*

---

आधुनिक काल तक आते-आते (19वीं सदी) हिंदी लगभग पूरी तरह विकसित हो जाती है। यह वह युग है जब हिंदी साहित्य में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का

प्रवेश मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि 19वीं सदी का आरंभिक युग खड़ी बोली के विकास को लेकर आरंभ होता है। ब्रजभाषा जो एक लंबी अवधि तक हिंदी साहित्य के पटल पर छाई हुई थी, उसका प्रभाव लुप्त हो जाता है। 19वीं सदी के आरंभ में तो हिंदी काव्य साहित्य की भाषा तो ब्रजभाषा बनी रहती है लेकिन गद्य साहित्य का लेखन खड़ी बोली में ही आरंभ होता है। 1920-25 के आसपास पहुँचकर धीरे-धीरे हिंदी कविता भी खड़ी बोली में होने लगती है और ब्रजभाषा अब हिंदी की एक बोली मात्र रह जाती है।

खड़ी बोली का विकास ही सही अर्थों में हिंदी का विकास है। अतः इसका विस्तार से अध्ययन हम आगे करेंगे।

### 8-3-1 [lll'lk cksyh dk fodkl]

खड़ी बोली का समुचित विकास तो शुरू होता है आधुनिक काल के आरंभ से ही, परंतु खड़ी बोली में बोलचाल तथा साहित्य लिखने की परंपरा काफ़ी पुरानी है। यह 19वीं शताब्दी की देन नहीं है। खड़ी बोली के संपूर्ण इतिहास एवं उसके विकास को समझने के लिए हम उसका अध्ययन दो वर्गों में विभाजित करना चाहेंगे। पहला है 19वीं सदी का इतिहास तथा दूसरा 19वीं सदी के बाद का।

#### 190th / nh dk i /ll'lk /

19वीं सदी के पहले खड़ी बोली गद्य साहित्य के संकेत तो हमें बराबर मिलते रहे हैं परंतु उस भाषा का स्वरूप आज की खड़ी बोली जैसा नहीं था। ग्यारहवीं सदी का एक काव्य ग्रंथ है 'राउलवेल'। इस ग्रंथ में हमें खड़ी बोली का प्राचीनतम रूप दिखाई देता है। यह भाषा का वही रूप है जो दिल्ली, मेरठ तथा पंजाब के आसपास बोली जाती थी। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले हिंदी साहित्य में कविता की प्रधानता थी, गद्य की नहीं यह बात आप लोग अच्छी तरह जानते हैं और कविता में भी हमें खड़ी बोली के संकेत मात्र ही प्राप्त होते हैं। गोरखनाथ जी द्वारा चलाए गए नाथ पंथ की हम चर्चा कर चुके हैं। गोरखबानी तथा नाथ सिद्धों की बानियों में हमें जगह-जगह खड़ी बोली रूपों के संकेत प्राप्त होने लगते हैं। 16वीं सदी के आरंभ का एक सूफ़ी ग्रंथ 'कुतुबशतक' प्राप्त होता है। इसके कवि कौन हैं यह पता नहीं चल सका है। इस गद्य के वार्तिक तिलक की भाषा दकिनी जैसी दिखाई देती है। उदाहरण के लिए –

“तब ग्यारह सौ आदमी कुतुबुद्दीन नवल पास रषे तिसमें पंच सौ बूढ़ी। तिन्हों के हाथ पंच सौ सोवन लठी। छिह सै छड़ीदार सोने की छड़ी लिए रहौ। तिन्हों को पातिस्याह हुकुम कीया कि वारीया बेलिया नैना विषलावों। पै साहिजाय अनंत जणै न पावै। ग्यारह सै आदमी उसी भंज़ति रषे.....।”

प्रणामी संप्रदाय की स्थापना स्वामी प्राणनाथ ने की थी। स्वामी जी की 1678ई. में लिखी गई एक गद्य रचना प्राप्त होती है जिसका नाम है – “शेखमीराजी का किस्सा”। इस ग्रंथ की भाषा से तत्कालीन हिंदी के स्वरूप का पता चलाया जा सकता है। यों तो प्राणनाथ जी की मातृभाषा सिंधी तथा गुजराती रही थी और वे अपनी रचनाएँ गुजराती में किया करते थे। एक बार वे उत्तर भारत आए और फिर उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में रचनाएँ करना आरंभ कर दिया। स्वयं प्रणामीजी ने इस भाषा का नाम “हिन्दुस्तानी” दिया है। उन्होंने 'सनंध' नामक पुस्तक की रचना की जिसे वे औरंगजेब को भेजना चाहते थे। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है –

बिना हिसाबे बोलियाँ, मिले सरल महान। सबसे सुगम जानके, कहूँगो हिन्दुस्तान।  
बड़ी भाषा ये ही भली, जो सब में जाहिर। करने पाक सबन को, अंतर माहे बाहेर।।

(प्राणनाथ जी जानते थे कि संसार में तो न जाने कितनी (बेहिसाब) भाषाएँ हैं लेकिन सबसे सुगम 'हिन्दुस्तान' (हिन्दुस्तानी) ही है। यह भाषा ही सबसे बड़ी भाषा है जो सरल है, महान है और सब लोगों के अंतर एवं बाह्य को पाक करने वाली है।)

प्रणामी साहित्य गद्य और पद्य दोनों रूपों में मिलता है। इनका गद्य साहित्य तो खड़ी बोली में ही लिखा गया है। डॉ. वार्ष्णय के अनुसार "यह गद्य साहित्य लगभग 1650-1680ई. के मध्य लिखा गया है। इस दृष्टि से यह उत्तरी भारत में लिखित उर्दू के गद्य साहित्य से लगभग 100 वर्ष पुराना है। उर्दू गद्य की प्रथम रचना 'दहमजलिस या मरबल कथा' का रचनाकाल बाद का है। गद्य साहित्य से यह सिद्ध हो जाता है कि खड़ी बोली गद्य साहित्य फोर्ट विलियम कॉलेज (1800ई.) से लगभग 150 वर्ष पूर्व से मिलने लगता है। (पृ. 193)

स्वामी प्राणनाथ जी की गद्य रचना 'शेख मीराजी का किस्सा' में हिन्दू-मुस्लिम समस्याओं पर विचार किया गया है। इस गद्य की भाषा का नमूना देखकर आप उस समय की खड़ी बोली के स्वरूप के बारे में जान सकते हैं। उदाहरण -

"तब उलमाहों ने जवाब दिया कि आखिरी जमाने में यानि क्यामत के दोरे में जाहिर होयेंगे। तब हम मुसलमानों ने पूछा के आखेर कब होयेगी। तब उन उलमाहों ने कहा कि आखर के दिन आए.....।"

खड़ी बोली की यह धारा हमें महाराष्ट्र के संत कवियों में देखने को मिलती है। नामदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम आदि संतों की वाणी में विशुद्ध बोली के रूपों की झलक हमें प्राप्त होने लगती है। वैसे तो कबीर की भाषा को लोगों ने विभिन्न स्थानों की शब्दावली प्राप्त होने के कारण "खिचड़ी भाषा" कह दिया था, परंतु कबीर स्वयं इस बात से परिचित रहे हैं कि वे अपनी कविता उसी भाखा (भाषा) में कर रहे हैं जो उस समय जन मानस में प्रचलित थी। संस्कृत भाषा तो उस समय के संभ्रांत वर्ग की भाषा रही होगी, जब कि "भाखा" का संबंध जनसामान्य से था। कबीर लिखते हैं -

"संसकिरत कबिरा कूप जल, भाखा बहता नीर"

लेकिन महाराष्ट्र के इन संतों के काव्य में तो खड़ी बोली के रूपों की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। नामदेव के पद की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए -

पांडे तुम्हारा महादेव, धौल बदल चढ्या आवत देखा था।

मोदी के घर खाना पाका, बाका लड़का मार्या था।।

जहाँ तक मध्यकालीन राम और कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रश्न है वह अवध एवं ब्रज प्रदेशों से राम और कृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण संबद्ध रहा। यही कारण है कि राम साहित्य की रचना अवधी में तथा कृष्ण साहित्य की रचना ब्रजभाषा में होती रही। फिर भी अनेक कवियों के साहित्य में जाने अनजाने लोक प्रचलित भाषा खड़ी बोली के तत्व भी आ ही गए हैं। इस संदर्भ में ब्रजभाषा के मर्मज्ञ महाकवि सूरदास की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं -

देखो मैया तैरा बालक, जिन मोय चटक लगाया है।।

अगर चंद नाहटा ने उल्लेख किया है कि 16वीं सदी की 'नव बोली छंद' नामक एक रचना प्राप्त होती है जिसमें जैसलमेरी, गुजराती, मुलतानी तथा दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली बोली के नमूने प्राप्त होते हैं। इनमें दिल्ली की बोली के उदाहरणों से पता चलता है कि यह उस समय की प्रचलित भाषा रही होगी। गंग नामक कवि की एक रचना है जिसका नाम है "चंद छंद बरनन की महिमा"। यह कवि अकबर के शासन काल में हुआ था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस पुस्तक की भाषा को शिष्ट समाज में प्रयुक्त होने वाली भाषा की संज्ञा प्रदान की है।

भक्तिकाल के उपरांत रीतिकाल तो दरबारी वातावरण में पल्लवित हुआ। रीतिकालीन कविता की भाषा ब्रजभाषा ही है परंतु यदि बारीकी से देखा जाए तो भक्तिकाल की ब्रजभाषा तथा रीतिकालीन ब्रजभाषा में कुछ अंतर देखे जा सकते हैं। रीतिकालीन ब्रजभाषा में दरबारी आग्रह के कारण खड़ी बोली के तत्वों की झलक अधिक दिखाई देती है। रहीम, आलम, घनानंद, गंग, ग्वाल, रघुनाथ आदि ऐसे ही कवि हैं। इनमें घनानंद की 'विरह लीला' और रघुनाथ की 'इश्क महोत्सव' ऐसी कृतियाँ हैं जो विशुद्ध खड़ी बोली में लिखी गई हैं।

18वीं शताब्दी में महामहोपाध्याय बररुचि ने 'पत्र कौमुदी' नामक पुस्तक की रचना की थी। इस पुस्तक के माध्यम से बररुचि ने पत्र व्यवहार की शिक्षा देने का प्रयास किया है। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि इस पुस्तक में पाँच पत्रों के उदाहरण दिए गए हैं जिनकी भाषा हिन्दुस्तानी है। इस प्रकार 18वीं सदी के आरंभ से ही उत्तर भारत की इस भाषा का नाम हिन्दुस्तानी चल पड़ा था। 18वीं सदी में ही रामप्रसाद निरंजनी ने एक ग्रंथ की रचना की थी जिसका नाम है 'भाषा योग वशिष्ठ'। सही मायनों में यह खड़ी बोली गद्य की पुस्तक समझी जानी चाहिए। इस पुस्तक की भाषा के बारे में चर्चा करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि लोगों को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि खड़ी बोली गद्य का विकास अंग्रेजों की प्रेरणा से हुआ था बल्कि खड़ी बोली गद्य का विकास तो उससे पहले से ही हो गया था। निरंजनी जी की भाषा का एक नमूना आप स्वयं देख सकते हैं –

"हे भगवान आप सब तत्वों और सब शास्त्रों के जानन हारे हौ, मेरे एक संदेह को दूर करौ। मोक्ष का कारण कर्म है कि ज्ञान है अथवा दोनों है, समझाय के कहो।" (योग वशिष्ठ)

निरंजनी के साथ-साथ दौलतराम का ग्रंथ "पद्म पुराण" भी हमें खड़ी बोली गद्य की शुरुआत के संकेत देता है। पद्म पुराण की भाषा का रूप इस प्रकार का है –

"जम्बू द्वीप के भारत क्षेत्र विषै मगध नामा देश अति सुंदर है जहाँ पुण्याधिकारी बसे हैं, इन्द्रलोक समान सदा भोगोपभोग करैं हैं और भूमि विषै सांठेन के बाड़े शोभायमान हैं।"

उधर दक्षिण भारत में तो उत्तर भारत की तुलना में गद्य लेखन की परंपरा और भी अधिक व्यवस्थित ढंग से विकसित होती हुई देखी जा सकती है। हम पीछे बता भी आए हैं कि जैसे-जैसे दक्षिण भारत में मुसलमान शासकों का राज्य स्थापित होता चला गया वैसे-वैसे दिल्ली और उसके आसपास बोली जाने वाली हिंदी या हिंदुस्तानी भाषा वहाँ फैलती चली गई। डॉ. चटर्जी ने लिखा है कि 14वीं शताब्दी के अंत तक दक्षिण के मुसलिम राज्य उत्तर की भाषा के केंद्र बन चुके थे। ये राज्य थे बहमनी साम्राज्य तथा



उसके तत्कालीन पाँच भाग – बरार, बीदर, गोलकुंडा, अहमदनगर और बीजापुर। धीरे-धीरे 17वीं शताब्दी तक इस भाषा ने वहाँ की साहित्यिक भाषा का दर्जा ले लिया और यह वहाँ की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। यही भाषा विद्वानों द्वारा दकनी/दकिनी या दक्खिनी के नाम से जानी गई।

इस दकनी के भी बोलचाल के स्तर पर अनेक रूप दिखाई देते हैं। औरंगाबाद और उसके आसपास की भाषा में मराठी के लक्षण अधिक हैं, जब कि गुलबर्गा और बीजापुर की भाषा में कन्नड़ का प्रभाव अधिक है; जब कि हैदराबाद की भाषा में तेलुगु भाषा का पुट अधिक मिलता है। लेकिन जहाँ तक साहित्यिक दकिनी का प्रश्न है इसमें अधिक स्थिरता एवं एकरूपता है।

दकनी में गद्य एवं पद्य दोनों में साहित्य लिखा गया है। ख्वाजा बंदानवाज़ गेसूदराज हुसैनी (1318–1422ई.) इसके पहले कवि माने जाते हैं। अब्दुस्समद ने 1553ई. में एक गद्य की पुस्तक लिखी है जिसका नाम है 'तफसीरे बहावी'। हुसैनी के ही समकालीन शाहमीरान की 'मरकुबुल कलूब' तथा शाहबुरहाबुद्दीन की 'कलमतुल हाकायत' भी गद्य साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। वजही जो एक बहुत अच्छे कवि भी थे, उनके 'सबरस' नामक पुस्तक (1620ई.) आधुनिक हिंदी के बहुत निकट की रचना है।

### 8-3-2 190th / nh ds ckn [kMh cksyh dk fodk/

उन्नीसवीं शताब्दी तक पहुँचते पहुँचते भारत पर अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो गया था। अब उनके लिए यह आवश्यकता थी कि वे अपना राज काज सुचारू रूप से चलाने के लिए यहाँ की भाषा सीखें। उस समय उनके समक्ष हिंदी की दो धाराएँ थीं – एक तो था हिंदी के बोलचाल का रूप तथा दूसरा रूप था जो मुसलिम दरबारों से होता हुआ आया था। यह वह रूप था जिसका प्रयोग मुसलमानों द्वारा होता था और जिसका नाम उर्दू पड़ा। पर दिन दैनिक कार्यों के लिए बोलचाल की भाषा को ही आधार बनाया जा सकता था। सामान्य प्रशासन के लिए जिस भाषा की आवश्यकता थी उसके लिए जनसामान्य के बीच प्रयुक्त होने वाली खड़ी बोली को ही लिया जा सकता था। इस प्रकार खड़ी बोली हिंदी को स्वीकृति मिली और धीरे-धीरे उसका विकास हुआ। इसका एक कारण यह भी था कि बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी का जिन सामंतों से पहले पहल संपर्क हुआ उनके दरबारों में खड़ी बोली का ही प्रचलन था। साथ ही इधर अंग्रेज सरकार ने अपनी सुविधाओं के लिए मुद्रण यंत्र स्थापित किए तो खड़ी बोली और प्रेस का संबंध स्थापित हो गया। 19वीं शती के आरंभ होते होते खड़ी बोली में अंग्रेजी से अनूदित सामग्री प्रकाश में आने लगी। इस प्रकार इस सदी के आरंभ में ही खड़ी बोली हिंदी गद्य की आधारभूत भाषा बन गई।

लेकिन अभी भी खड़ी बोली का व्यवस्थित ढंग से विकास आरंभ नहीं हो पाया था। यह कार्य हुआ कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद। वस्तुतः फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के पीछे भी अंग्रेजों का अपना हित था। लार्ड वेलेज़ली अंग्रेज अफसरों को भाषा की शिक्षा दिलाना चाहते थे। इसके लिए जॉन गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में 'ओरिएंटल सेमिनरी' नामक संस्था की स्थापना की गई और आगे चल कर यही संस्था फोर्ट विलियम कॉलेज के नाम से जानी गई। गिलक्राइस्ट की अपनी मान्यता थी कि हिन्दुस्तानी की तीन शैलियाँ हैं – 1) दरबारी फ़ारसी 2) हिन्दुस्तानी शैली या उर्दू तथा 3) हिंदी या गँवारू शैली। गिलक्राइस्ट ने इन तीनों शैलियों में से दूसरी शैली अर्थात् उर्दू को महत्व दिया। उन्होंने जिसे उर्दू कहा था यह था खड़ी बोली का ही रूप था।

1802ई. में इस कॉलेज में भाषा मुंशी के पद पर लल्लू जी लाल की नियुक्ति की गई और इस कॉलेज के मंच से अनेक पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित की गईं जिनमें 'सिंहासन बत्तीसी' 'बेताल पचीसी', 'शकुन्तला' नाटक आदि उल्लेखनीय हैं। गिलक्राइस्ट ने स्वयं भी दो पुस्तकें 'डिक्शनरी आफ इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी' (1787-90) तथा 'हिन्दुस्तानी व्याकरण' की रचना की। यों तो फोर्ट विलियम कॉलेज का पूरा माहौल उर्दू का ही था, पर लल्लूलाल ब्रजभाषा से प्रभावित खड़ी बोली में लिखा करते थे। इसी संस्था में एक दूसरे विद्वान थे सदल मिश्र। वे भी हिंदी खड़ी बोली में साहित्य लेखन करते थे, परंतु उनकी खड़ी बोली पर पूर्वी हिंदी का पुट अधिक परिलक्षित होता है। उसी समय फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर रहकर स्वतंत्र लेखन करने वालों में दो विद्वानों के कार्य इस दिशा में बड़े महत्त्व के हैं। मुंशी सदासुख लाल नियाज ने विष्णु पुराण के एक प्रसंग पर ग्रंथ लिखा था और मुंशी इंशा अल्ला खाँ की प्रसिद्ध कृति 'रानी केतकी की कहानी' उसी समय प्रकाशित होकर सामने आई थी। कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय खड़ी बोली गद्य के विकास को इन चारों ही महानुभावों – लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, सदासुखलाल तथा इंशा अल्ला खाँ का पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ।

इन चारों सज्जनों में मुंशी सदासुखलाल की भाषा ही टकसाली भाषा है क्योंकि यह भाषा का वह रूप है जो फोर्ट विलियम कॉलेज के परिवेश के बाहर रहकर विकसित हुआ। यही वह रूप था जो आम जनता के बीच परस्पर व्यवहार में लाया जाता था। इस भाषा रूप का एक नमूना देखिए –

“इसे जान गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चांडाल से ब्राह्मण हुए, जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरंत ही ब्राह्मण से चांडाल होता है.....।”

इतिहास को हमने पालि, प्राकृत और अपभ्रंश की व्याकरणिक विशेषताओं के संदर्भ में देखा।

मुंशी सदासुख लाल की भाषा संस्कृत शब्दों से युक्त खड़ी बोली है। एक अन्य उदाहरण और देखिए—

“विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसकी मनोवृत्ति है, वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और असत्य छिपाइए।”

हिंदी गद्य के विकास में मुंशी सदासुखलाल के बाद दूसरा उतने ही सम्मान से स्मरण किया जाने वाला नाम है मुंशी इंशा अल्ला खाँ का। आपका गद्य भी सदासुखलाल की तरह फोर्ट विलियम कॉलेज के परिवेश से बाहर रहकर विकसित हुआ। मुंशी जी की सर्वप्रसिद्ध रचना जिसे हिंदी साहित्य के इतिहास में हिंदी की प्रथम कहानी होने का गौरव प्राप्त है, “रानी केतकी की कहानी” है। मुंशी जी की भाषा में सहजता, आत्मीयता एवं घरेलूपन के दर्शन होते हैं। देखिए उनकी भाषा का एक नमूना –

“तुम अभी अलहड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं है। जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूंगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो मुआ निगोड़ा भूत, मुछंदर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवाकर छिनवा लूंगी।”

लल्लूलाल का रचनाकाल भी मुंशी इंशा अल्ला के आसपास का ही है। लल्लू जी लाल ने यों तो अनेक पुस्तकों की रचना की थी जैसे 'राजनीति', 'ब्रजभाषा व्याकरण', 'सभा

विलास', 'लाल चंद्रिका' आदि, किंतु उनको जो प्रसिद्धि मिली थी वह 'प्रेम सागर' के कारण थी। प्रेमसागर में भागवत के दशम स्कंध की कहानी को लिया गया है। उक्त ग्रंथ की रचना में लेखक ने अरबी-फारसी के शब्दों को सायास न आने देने की चेष्टा की है अतः इसके कारण उनकी भाषा में वह सहजता जो इंशा अल्ला खॉ की भाषा में दिखाई देती है, लुप्त हो गई है। यहाँ स्वाभाविकता के स्थान पर पांडित्य प्रदर्शन अधिक झलकता है। 'प्रेम सागर' से उनकी भाषा का एक उदाहरण आप लोग देख सकते हैं—

“महाराज जब ऐसे समझाय बुझाय अक्रूरजी ने कुंती से कहा तब वह सोच समझ चुप हो रही और उनकी कुशल पूछ बोली, कहो अक्रूरजी, हमारे माता-पिता और भाई वासुदेव जी कुटुम्ब समेत भले हैं और श्री कृष्ण, बलराम कभी भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव अपने इन पाँच भाइयों की सुध करते हैं”?

लल्लूलाल के साथ सदल मिश्र का नाम भी खड़ी बोली के विकास से जुड़ा है क्योंकि वे भी फोर्ट विलियम कॉलेज के परिवेश में ही रचनाएँ लिख रहे थे। सदल मिश्र की प्रमुख रचनाओं में 'नासिकेतोपाख्यान' तथा 'आध्यात्म रामायण' को काफी प्रसिद्धि मिली। सदल मिश्र की भाषा लल्लूलाल की तुलना में अधिक परिष्कृत है। उनकी भाषा पर ब्रजभाषा और पूर्वी बोली का प्रभाव है परंतु फिर भी यह वही भाषा है जो दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होती थी। 'नासिकेतोपाख्यान' से उद्धृत निम्नलिखित उदाहरण देखिए —

“यह सुनते ही राजा चिहुँक उठे। एक क्षण तो ईश्वर का ध्यान किया, फिर बोले महारानी! शीघ्र कहो क्या ऐसा अनर्थ हुआ कि जिससे इतनी घबरा रही हो मैंने जीवन दान दिया। इसका कारण कहो। हमारे जीते ही तुम्हारी यह अवस्था होय।”

*[Mkt'lk chyt xn; ds fodkI es bI kbI i knfj; ks dk ; kxntu*

कंपनी सरकार की छत्रछाया में ईसाई धर्म प्रचारक पादरियों ने खड़ी बोली के विकास में पर्याप्त मदद की है। इन ईसाई मिशनरियों का उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार-प्रसार करना था और इसके लिए उन्होंने अपनी धार्मिक पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित कराए। 1801 में विलियम केरे ने सबसे पहले “न्यू टेस्टामेंट” का अनुवाद प्रकाशित कराया था। आगे चलकर सेण्ट मेथ्यू तथा सेण्ट जॉन के विचारों के अनुवाद प्रकाशित कराए गए। 1854ई. में “हिस्ट्री ऑफ बाइबिल” का अनुवाद सामने आया। इस प्रकार इन ईसाई मिशनरियों ने अनेक छोटी बड़ी पुस्तकों का खड़ी बोली में प्रकाशन करा कर खड़ी बोली के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है। पुस्तकों के प्रकाशन के अलावा इन लोगों ने शिक्षा के लिए स्कूल कॉलेज खुलवाए। जब इन शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाने के लिए पुस्तकों की आवश्यकता हुई तो विभिन्न विषयों जैसे— इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र आदि की पुस्तकें तैयार कराई गई।

1801 से 1823 तक इन ईसाई मिशनरियों ने न केवल हिंदी में बल्कि अवधी, ब्रज, बघेली, मारवाड़ी, कन्नौजी आदि सभी भाषाओं में धर्म प्रचार से संबंधित लाखों पुस्तकें छपवाईं। यद्यपि व्याकरणिक दृष्टि से इन पुस्तकों की भाषा में वह परिपक्वता नहीं है और स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार की त्रुटियाँ भी हैं परंतु इन्होंने हिंदी के आगे ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसकी भाषा के स्वरूप का अवलोकन करने के उद्देश्य से यहाँ चम्बरलेन द्वारा अनूदित “न्यू टेस्टामेंट” से, एक अंश उद्धृत है —

“हे तुम सब जो परिश्रम करते हो और बोझ वाले होते हो, मेरे पास आओ और मैं तुम्हें सुस्तालूंगा। अपनेयों पर मेरा जुआ लेओ और मुझसे सिखो जिसमें मैं नरम और मन में

लघु हूँ और तुम अपने जीवों से विश्राम पावोगे। क्योंकि मेरा जूवा सहज और मेरा भार हलका है।”

*fgnh hkh dk fodki*

*i=&if=dk,j vkj [Mkh ckyh dk fodki*

19वीं सदी का पूर्वार्द्ध इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि इस युग में हिंदी पत्रकारिता जन्म लेती है जिससे हिंदी के विकास को दुगुनी शक्ति एवं गति प्राप्त होती है। कलकत्ता निवासी पं. युगल किशोर को हिंदी पत्रकार कला का जन्मदाता माना जाता है। उन्होंने अपने परिश्रम एवं लगन से 30 मई 1826 को “उदन्त मार्तण्ड” नामक पत्र प्रकाशित किया। परंतु दुर्भाग्यवश ग्राहक उपलब्ध न हो पाने के अभाव में 4 दिसम्बर 1827 को यह पत्र बंद हो गया। इसके बाद 9 मई 1829 को “बंगदूत”, 1864 में “प्रजामित्र” और 1844 में शिव प्रसाद सितारे हिंद का “बनारस अखबार” हिंदी के विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। 1854 में “समाचार सुधावर्षण” नामक पत्र प्रकाशित हुआ था। यहाँ इस पत्र से एक पंक्ति उद्धृत की जा रही है –

“यहि सत्य हम लोग अपनी आँखों से प्रत्यक्ष महाजनों की कोठियों में देखते हैं कि एक की लिखी हुई चिट्ठी दूसरा जल्दी बाँच सकता नहीं।”

---

#### *8-4 fgnh vkj mnw dk ijLij l cdk*

---

हिंदी के विकास के नाम पर हमें दो प्रकार के प्रयास दिखाई देते हैं। एक ओर है प्रचार साहित्य जिसमें धार्मिक पुस्तकों, साहित्यिक पाठ्यपुस्तकों आदि में खड़ी बोली का प्रयोग किया गया। अंग्रेजों ने यह समझ लिया था कि इस देश पर राज करने के लिए हिंदू-मुसलमानों में परस्पर वैमनस्य बनाए रखने में ही उनकी भलाई है। और इस वैमनस्य को भाषा के झगड़े के साथ आसानी से बनाए रखा जा सकता है। वास्तव में हिंदी-उर्दू का विवाद भाषागत विवाद न होकर सांप्रदायिक विवाद अधिक है, अन्यथा यदि गंभीरता से देखा जाए तो हिंदी और उर्दू एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। एक में संस्कृत की तत्सम शब्दावली की बहुलता है तो दूसरी में अरबी-फ़ारसी के शब्दों की। एक समुदाय के लोग एक भाषा से अपनी सामाजिक अस्मिता का निर्धारण करते हैं तो दूसरा समुदाय दूसरी भाषा के माध्यम से। हाँ, लेखन के स्तर पर दोनों में अंतर अवश्य है। हिंदी नागरी लिपि में लिखी जाती है तो उर्दू फ़ारसी लिपि में। जहाँ तक भाषा की संरचना के अंतर की बात है दोनों में कोई अंतर नहीं है।

1700ई. में वली दकनी जब दक्षिण भारत से दिल्ली आए तो उन्होंने यहाँ आकर एक भाषा का प्रचलन किया, जिसका नाम उन्होंने ‘रेख्ता’ दिया। रेख्ता का अर्थ होता है “छितराया हुआ”। अर्थात् जिस देशी भाषा में अरबी-फ़ारसी के शब्द छितराए हुए मिलते हैं वही भाषा “रेख्ता” कही गई। वली की यह रेख्ता काफी लोकप्रिय साबित हुई क्योंकि इसे शासन तंत्र से जुड़े फ़ारसी बोलने वाले मुसलमान भी समझ सकते थे और जनसामान्य भी देशी ढाँचा होने के कारण इसे समझ सकता था। पर धीरे-धीरे इस ‘रेख्ता’ में अरबी-फ़ारसी के शब्दों की संख्या बढ़ती चली गई और यह उस समय प्रचलित देशी भाषा रूप से अलग हट कर एक नई शैली के रूप में प्रसिद्धि पा गई। भाषा के इसी रूप को उर्दू कहा गया।

इस प्रकार 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक हमें विद्वानों के दो वर्ग दिखाई देते हैं। एक वर्ग हिंदी का पक्षधर है तो दूसरा उर्दू का। उर्दू की तरफ़दारी करने वालों में एक नाम है सर सैयद अहमद ख़ाँ का। सर सैयद ने उर्दू के प्रचार के लिए गाज़ीपुर में

‘ट्रांसलेशन सोसाइटी’ की स्थापना की थी। बाद में यही संस्था अलीगढ़ में “साइंटिफिक सोसाइटी” के नाम से चलने लगी और इस्लामी संस्कृति या उर्दू के प्रचार-प्रसार के लिए जीतोड़ प्रयास करती रही।

उधर हिंदी के समर्थकों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक थी। इस प्रतिक्रिया का एक अन्य कारण यह था कि ईसाइयों द्वारा अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के कारण यहां के निवासियों के सामने धार्मिक संकट खड़ा हो गया था। ईसाई मिशनरी यहाँ के निवासियों की गरीबी का लाभ उठाकर उनके धर्म परिवर्तन का कार्य कर रहे थे। इसीलिए राजा राममोहन राय ने ब्रह्मज्ञान के प्रचार का बीड़ा उठाया। उन्होंने वेदान्त सूत्रों का हिंदी में अनुवाद प्रकाशित करवाया तथा सन् 1829 के आसपास ‘ब्रह्म समाज’ की ओर से ‘बंगदूत’ नामक पत्र भी हिंदी में निकाला।

मुगलों के समय से ही भारत में अदालतों की भाषा फ़ारसी चली आ रही थी। इसके कारण आम आदमी को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता था। अंग्रेजों ने इस कठिनाई का अनुभव किया था और सन् 1836 में अदालतों का कार्य देशी भाषा या हिंदी में किए जाने का एक सरकारी आदेश निकाला गया। लेकिन इस आदेश का मुसलमानों ने कड़ा विरोध किया जिसके फलस्वरूप सरकार को अपना आदेश एक साल के बाद ही वापस लेना पड़ा। यह वह समय है जब शिक्षा के क्षेत्र में राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद का आगमन होता है। राजा जी हिंदी और नागरी लिपि के समर्थक थे। 1856 में जब वे इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स के पद पर आसीन हुए तो वे बराबर हिंदी के समर्थन में अपने विचार व्यक्त करते रहे। उन्होंने लोगों को यह शिक्षा दी और बताया कि राष्ट्रीय जागरण एवं राष्ट्रीय उत्थान के बिना हिंदी का विकास संभव नहीं। परंतु बहुत लम्बे समय तक वे अपने तर्कों से अपने विरोधियों को समझा न पाए और उन्होंने स्वयं समझौतावादी मध्यमार्ग अपना लिया। उन्होंने भी हिंदी में फ़ारसी के शब्दों के प्रयोग की बात को स्वीकार कर ही लिया जो एक प्रकार से उर्दू का समर्थन ही था। उनकी भाषा का नमूना देखकर आपको पता चल जाएगा कि उनकी भाषा कहाँ तक हिंदी है?

“यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं की मदद से बनता है उसका हाल कई दफ़ा ज़ाहिर हो चुका है।”

और फिर सितारे हिंद ने स्वयं तथा अपने अन्य अनेक मित्रों को इसी मिली-जुली शैली में लेखन के लिए प्रेरित किया।

परंतु राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की इस भाषा नीति का भी धीरे-धीरे विरोध आरंभ हुआ। शिक्षा विभाग में उन्हीं दिनों एक सज्जन थे वीरेश्वर चक्रवर्ती। चक्रवर्ती महोदय ने राजा साहब की भाषा का खुल कर विरोध किया। यदि सच्ची हिंदुस्तानी भाषा किसी ने लिखी तो वे थे मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ़ और देवकीनंदन खत्री। इन लोगों ने अपनी भाषा में अरबी-फ़ारसी के उन्हीं शब्दों को जगह दी जो जन सामान्य में प्रचलित थे। मुंशी देवी प्रसाद की भाषा की कुछ पंक्तियां देखिए –

“संवत् 1610 में सलेमशाह के मरने पर राठौड़ पृथ्वी राज ने जोधपुर से जाकर फिर अजमेर के किले को जा घेरा। किलेदार ने हिन्दू-पति को किला देना कह के चित्तौड़ से बुलाया। महाराणां बहुत सी फौज लेकर गए, पृथ्वीराज को हटाकर अजमेर में अमल कर लिया और पठानों को जिंदा और सलामत निकाल कर नागौर भी जा दबाया.....।”

अब देवकी नंदन खत्री की भाषा का नमूना भी देखिए –

*fgnht III'kk dk fodki*

“चाहे कोई हिंदू हो चाहे जैन या बौद्ध हो और आर्य समाजी व धर्म समाजी ही क्यों न हो परंतु जिन सज्जनों के मानवीय अवतारों और पूर्वजनों ने इस पुण्य भूमि का अपने आविर्भाव से गौरव बढ़ाया है उनमें ऐसा अभाग कौन होगा जो पुण्यता और मधुरता युक्त संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रचार (न) चाहेगा.....।”

परंतु कुछ ऐसे लोग भी थे जो मात्र संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली का समर्थन कर रहे थे। राजा लक्ष्मण प्रसाद ऐसे ही व्यक्तित्व थे जिन्होंने फारसी बहुल हिंदी के स्थान पर संस्कृत गर्भित खड़ी बोली का समर्थन किया। उन्होंने हिंदी के ऐसे ही रूप में सन् 1862 में ‘अभिज्ञान शाकुन्तलम्’ का अनुवाद किया तथा ‘प्रजा हितैषी’ नामक पत्र निकालकर लोगों को शुद्ध भाषा लिखने के लिए प्रेरित किया। राजा लक्ष्मण सिंह स्वयं भाषा के विशुद्ध रूप में विश्वास रखते थे और चाहते थे कि दूसरे लोग भी तत्सम शब्दावली से ओत-प्रोत शुद्ध हिंदी में ही लेखन कार्य करें। राजा जी की भाषा का नमूना नीचे देखा जा सकता है –

“महात्मा! तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछना चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो.....।”

‘रघुवंश’ का भी राजा साहब ने अनुवाद किया था। इस अनुवाद की भूमिका में हिंदी-उर्दू के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं –

“हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी हैं। कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी-फ़ारसी के शब्दों के बहाने हिंदी न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं जिसमें अरबी-फ़ारसी के शब्द भरे हों।”

इसके अतिरिक्त खड़ी बोली के समर्थन में उस समय के विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक आंदोलनों ने भी बड़ी प्रभावी भूमिका निभाई है। बंगाल में नवीन चंद्र राय एक ऐसा ही नाम है। नवीन बाबू ब्रह्म समाज के समर्थक थे। ब्रह्म समाज के विचारों के प्रचार हेतु उन्होंने एक पत्रिका निकाली थी जिसका नाम था ‘ज्ञान प्रदायिनी’। उधर पंजाब में स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रसिद्ध ग्रंथ ‘सत्यार्थ प्रकाश’ (1865) प्रकाशित होकर लोगों के समक्ष आया। स्वामी जी ने जगह-जगह अपने प्रभावी भाषा देकर लोगों को आर्य सभ्यता और संस्कृति के मूल मंतव्यों से परिचित कराया। हिंदी के विकास, प्रचार और प्रसार में आर्य समाज की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण रही है। स्वामीजी की भाषा तत्सम शब्दों से युक्त खड़ी बोली थी। देखिए एक उदाहरण –

“पुरुषों का और कन्याओं का ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या जब पूर्ण हो जाय तब देश का राज होय और जितने विद्वान लोग वे सब उनकी परीक्षा यथावत करें। जिस पुरुष या कन्या में श्रेष्ठ गुण जितेन्द्रिय सत्यवचन, निराभिमान, उत्तम बुद्धि, पूर्ण विद्या, मधुरवाणी, कृतज्ञता और गुण के प्रकाश में अत्यंत प्रीति हो जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, कृतघ्नता, कपट, ईर्ष्या, द्वेषादिक दोष न होवें, पूर्ण कृपा से लोगों का कल्याण चाहै उसका ब्राह्मण का अधिकार दे वै.....।”

इसी प्रकार पं. अंबिका दत्त व्यास ने सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार के माध्यम से हिंदी के विकास के क्षेत्र में चार चाँद लगाए।

हमने अभी तक देखा कि खड़ी बोली किस प्रकार के तमाम समर्थन और विरोध के टेढ़े-मेढ़े रास्तों को पार करती हुई उस स्थिति में आ पहुँची थी जहाँ से अब वह निश्चित होकर जनमानस के विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान कर सके। और तभी उसी समय हिंदी साहित्य पटल पर भारतेन्दु जैसा व्यक्तित्व उभर कर आता है। भारतेन्दु का समय 1850 से 1885 तक है। हमने पीछे देखा था कि साहित्य के क्षेत्र में भाषा विवाद के संदर्भ में राजा लक्ष्मण सिंह तथा राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद भिन्न दृष्टिकोण के समर्थक रहे हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उन दोनों से भिन्न भाषा का शिष्ट तथा परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया। न तो वह भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों को सायास टूंसने के पक्ष में थे और न ही उन्हें अरबी-फ़ारसी भाषा के प्रचलित सरल विदेशी शब्दों को हिंदी में प्रयोग करने में कोई संकोच था। इनकी भाषा में तो ब्रजभाषा का, देशज शब्दों का बड़ा ही स्वाभाविक ढंग से प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु की टकसाली हिंदी का एक नमूना आप लोग देख सकते हैं –

“प्यारे रात छोटी है और स्वांग बहुत है। जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा। हाय मुझसी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं। रात दिन रोते ही बीतते हैं। कोई बात पूछने वाला नहीं, क्योंकि संसार में जी कोई नहीं देखता, सब ऊपर ही की बात देखते हैं। हाय मैं तो अपने-पराये सबसे बुरी बनकर बेकाम हो गई।”

कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी खड़ी बोली अब धीरे-धीरे विकास पथ पर परिमार्जित होती हुई आगे बढ़ने लगी। इसमें अरबी-फ़ारसी के शब्द आ गए थे अब उसमें अंग्रेजी के आगमन से अंग्रेजी के शब्द भी स्वाभाविक ढंग से आकर खपने लगे और धीरे-धीरे ये हिंदी की अपनी ही धरोहर बन गए। भारतेन्दु तो हिंदी के जातीय रूप को लेकर आगे चले। हिंदी का जितना व्यवस्थित ढंग से प्रयोग भारतेन्दु युग में हुआ, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। भारतेन्दु युग से पूर्व इसमें कहीं ब्रजभाषा का प्रभाव दिखाई देता था तो कहीं पूर्वी हिंदी की छाप, कहीं अरबी-फ़ारसी का पुट अधिक था तो कहीं वह संस्कृत की तत्सम शब्दावली के बोझ तले दबी जा रही थी। व्याकरण, वर्तनी, विराम चिह्नों आदि से संबंधित त्रुटियों का तो कहना ही क्या था? भारतेन्दु से पहले हिंदी की गाड़ी चल तो पड़ी थी। लेकिन अभी तक वह अपना सर्वमान्य एवं सर्वस्वीकृत तथा सर्वग्राह्य रूप लेकर उपस्थित नहीं हो पाई थी। यह कार्य हुआ ‘भारतेन्दु युग’ में आकर और इस कार्य को परिमार्जित एवं परिष्कृत रूप में संपन्नता मिली आगे चलकर ‘द्विवेदी युग’ में। भारतेन्दु स्वयं तो कर्मठ व्यक्ति थे ही पर उन्होंने हिंदी प्रेमियों और साहित्यकारों की एक ऐसी मंडली तैयार की जिसने खड़ी बोली के विकास में सामूहिक रूप से कार्य करना आरम्भ किया। अब साहित्य के क्षेत्र में नए-नए रास्ते खुल गए। गद्य की नई-नई विधाओं पर लेखनी चलाई गई। उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध, आलोचना के अलावा विभिन्न ज्ञान-विज्ञान के विषयों पर साहित्य सर्जन होना आरंभ हुआ। इस कार्य में स्वयं भारतेन्दु के अलावा जो दूसरे प्रमुख साहित्यकार सामने आए उनमें लाला श्री कृष्णदास (1851-1887), बालकृष्ण भट्ट (1844-1924), प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894), राधा कृष्ण दास (1865-1907), राधा चरण गोस्वामी (1851-1925) तथा बदरी नारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ (1855-1923) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हम 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से तुलना करें तो भारतेन्दु युग में भाषा परिमार्जन की दिशा में अभूतपूर्व कार्य हुआ और साथ ही उसमें राष्ट्रीय भावना एवं नवोत्थान की चेतना भी जागृत हुई। भारतेन्दु युग के इन विद्वानों ने जहाँ लोगों को भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीयता

एवं आर्थिक जागरूकता के प्रति सचेत किया वहीं दूसरी ओर खड़ी बोली के प्रचार एवं प्रसार के लिए भी महत्वपूर्ण कार्य किये। जैसा कि आप लोग जानते ही हैं, भारतेन्दु युग आधुनिक हिंदी साहित्य के इतिहास का वह आरंभिक चरण था जहां गद्य की विधाओं के लिए तो खड़ी बोली को आधार बनाया गया था परंतु कविता के क्षेत्र में लोगों का ब्रजभाषा से मोह नहीं छूटा था। कविता अभी भी ब्रजभाषा में ही लिखी जाती थी। सर्जनात्मक साहित्य के अलावा इस युग में बंगला, संस्कृत तथा अंग्रेजी से अनुवाद के कार्य भी किए गए। पर जैसा कि हमने पीछे कहा था खड़ी बोली के स्वरूप को पूर्ण स्थिरता, परिमार्जन एवं उसके परिष्कार करने की इस प्रक्रिया को संपन्नता प्राप्त हुई आगे चलकर पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से 'द्विवेदी युग' में।

## 8-6 chl oha 'krk'nh ea fgnh

हिंदी के प्रचार और प्रसार की प्रक्रिया भारतेन्दु के जीवनकाल से ही आरंभ हो गई थी। यह बात हम ऊपर कह आए हैं। आर्य समाज ने जो आंदोलन चलाया था उससे भी इस दिशा में पर्याप्त सहायता मिली। उधर भारतेन्दु के जीवन के अंतिम समय में "भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस" की स्थापना भी हो चुकी थी और लोगों के मन में अब राष्ट्रीय स्तर पर खड़ी बोली हिंदी के प्रचार एवं प्रसार की बात घर कर गई थी। यह ऐसा आन्दोलन था जिसमें देश के जाने माने पत्रकार, शिक्षाविद, वैज्ञानिक, नेता सभी लोग आगे आए। इन सब में पत्रकारों की भूमिका सराहनीय है। बीसवीं शताब्दी में इसी कार्य को आगे ले जाने में "सरस्वती" पत्रिका की भूमिका भुलाई नहीं जा सकती। सरस्वती के संपादक स्वयं पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका के माध्यम से भाषा के परिमार्जन एवं परिष्कार का बीड़ा उठाया और वे पूरे मनोयोग से हिंदी की सेवा में जुट गए।

हिंदी प्रेमियों में कई प्रकार के लोग शामिल थे। इसमें एक ओर साहित्यकार थे तो दूसरी ओर वे देशभक्त जिनके मन में देश को आजाद कराने की भावना प्रज्वलित हो रही थी। वे लोग समझते थे कि हिंदी को सक्षम और समर्थ बनाए बिना देश को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। देशभक्तों की इस श्रेणी में संपूर्ण राष्ट्र के अलग-अलग प्रांतों के लोग शामिल थे। इनमें से बहुत-से तो ऐसे देश भक्त थे जो स्वयं हिंदी नहीं जानते थे पर उनमें राष्ट्रीय भावना इतनी प्रबल थी कि ये सभी लोग देश और भाषा के मसले पर अपनी प्रांतीयता की भावना से ऊपर उठे हुए थे। इसलिए अब हिंदी में प्रांतीय भाषाओं के शब्द भी आने लगे थे। भारतेन्दु युग के लेखकों के गद्य में ब्रजभाषा के प्रयोग भी आ ही गए थे तथा दूसरी ओर कुछ लोगों का फ़ारसी शब्दों वाली हिंदी का मोह भी बना हुआ था। कुछ साहित्यकार ऐसे भी थे जिन्होंने अपने मन-माने ढंग से नए-नए शब्दों को गढ़ लिया था और साहित्य में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के सामने सबसे बड़ी समस्या यही थी कि वे हिंदी की इस अराजकतापूर्ण स्थिति से कैसे निपटें और उसे परिमार्जित कर एकरूपता की दिशा में कैसे आगे ले जाएँ। भारतेन्दुयुगीन भाषा के मनमाने, अनियमित और क्षेत्रीय प्रयोगों को ठीक कर भाषा को सुव्यवस्थित बनाना द्विवेदी जी के सम्मुख उस समय की सबसे बड़ी चुनौती थी। द्विवेदी जी की हिंदी तथा हिंदी साहित्य को दो महत्वपूर्ण देन हैं। एक तो उन्होंने लोगों को ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में कविता लिखने की प्रेरणा दी। बल्कि इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि उन्होंने लोगों को खड़ी बोली में कविता करना सिखा दिया और द्विवेदी युग से हिंदी कविता भी गद्य के साथ-साथ खड़ी बोली में लिखी जाने लगी। द्विवेदी जी का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान है 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी भाषा का परिमार्जन एवं सुधार। सरस्वती पत्रिका में छपने के लिए जो लेख आते थे उनमें भाषा,



व्याकरण तथा वर्तनी आदि की अनेक अशुद्धियाँ होती थी। द्विवेदी जी रात-रात बैठकर इन लेखों की भाषा स्वयं सुधारा करते थे और लोगों को सही भाषा लिखने की प्रेरणा देते थे। उन्होंने स्वयं ऐसे लेख लिखे जिनके माध्यम से उन्होंने व्याकरण, वर्तनी, विराम चिह्नों आदि का आदर्श रूप जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों, शासन-न्याय, शिक्षा, खेल-कूद आदि से संबंधित विषयों पर व्यवस्थित ढंग से विचार प्रस्तुत करने के लिए अन्य भाषाओं जैसे बंगला, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, संस्कृत आदि के शब्द गृहीत किए और हिंदी को समर्थ बनाने का प्रयास किया। भारतीय जन बोलियों से हिंदी का जो संबंध एक प्रकार से कट गया था उसे उन्होंने पुनः स्थापित किया।

द्विवेदी युग हिंदी साहित्य का वह युग है जहां आकर एक ओर हिंदी गद्य की सभी शैलियाँ विकसित हुईं तो दूसरी ओर हिंदी के शब्द भंडार में वृद्धि हुई। इस युग में जो साहित्यकार सामने आए उनमें बालमुकुंद गुप्त, पद्म सिंह शर्मा, सरदार पूर्ण सिंह, गोविंद नारायण मिश्र, प्रेमचंद, चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', राम चंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास के नाम हिंदी साहित्य के इतिहास में अमर हैं। अब साहित्य की ऐसी कोई विधा और ऐसी कोई शैली नहीं थी जिस पर इस युग के विद्वानों ने अपनी लेखनी न चलाई हो। आत्मकथात्मक, विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, भावात्मक, आलोचनात्मक, हास्य-व्यंग्य प्रधान, तर्कपूर्ण, रूपात्मक, प्रतीकात्मक आदि सभी प्रकार के शैली रूपों के दर्शन आप इस युग के गद्य साहित्य में कर सकते हैं। उदाहरण के लिए बालमुकुंद गुप्त की व्यंग्यात्मक शैली की एक झलक उनके प्रसिद्ध लेख "शिव शंभु के चिट्ठे" से देख सकते हैं जहाँ वे लॉर्ड कर्जन पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं "दूज के चाँद के उदय का भी एक समय है। लोग उसे जान सकते हैं। माई लॉर्ड के मुख चंद्र के उदय के लिए कोई समय भी नियत नहीं। अच्छा, जिस प्रकार इस देश के निवासी माई लॉर्ड का चंद्रानन देखने को टकटकी लगाए रहते हैं या जैसे शिव शंभु के जी में अपने देश के माई लार्ड से होली खेलने की आई, उस प्रकार कभी माई लार्ड को भी इस देश के लोगों की सुध आती होगी।" और अब प्रस्तुत है आचार्य रामचंद्र शुक्ल की विचारात्मक शैली का एक उदाहरण उनके प्रसिद्ध निबंध "लज्जा और ग्लानि" से—

"ग्लानि में अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता, आदि के अनुभव से जो संताप होता है, वह अकेले में भी होता है, दस आदमियों के सामने प्रकट भी किया जाता है। ग्लानि अन्तःकरण की शुद्धि का एक विधान है।..... अपने दोष का अनुभव, अपने अपराध का स्वीकार, आंतरिक अवस्था का उपचार तथा सच्चे का द्वारा है।"

भारतेंदु युग की तुलना में द्विवेदी युग में कहानी और आलोचना के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ था। कहानी की रोचकता और लोकप्रियता ने हिंदी के विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योग दिया है। भारतेन्दु युग में हिंदी गद्य का जो भवन तैयार किया गया था उसे द्विवेदी युग में और भी परिमार्जित कर सुसज्जित किया गया।

द्विवेदी युग की समाप्ति पर खड़ी बोली में एक स्थिरता आ गयी थी और उसकी एक व्याकरणिक व्यवस्था बन गयी थी। इस बात का प्रमाण है पं. कामता प्रसाद गुरु का 'हिंदी व्याकरण'। 'छायावाद' के आरंभ से शुरू हुई हिंदी के पुनरुत्थान की कहानी। व्याकरणिक स्थिरता और मानक प्रयोगों की ओर रुझान की कहानी छायावादी युग से आरंभ होती है। इस युग में हिंदी के शब्द भंडार में वृद्धि करने के उद्देश्य से संस्कृत के उपसर्ग एवं प्रत्यय लेकर नए-नए शब्दों के निर्माण का कार्य किया गया। संस्कृत के अलावा अंग्रेजी के बहुप्रचलित रूपों, वाक्यांशों के अनुवाद किए गए तथा छायावादी

कवियों ने अपनी कविता में अनेक नए-नए ध्वन्यात्मक शब्दों को गढ़ने का काम किया। आगे चलकर 'प्रयोगवाद' और 'प्रगतिवाद' की धाराएँ हिंदी साहित्य में पल्लवित हुईं और इनके अंतर्गत देशी शब्दों को फिर साहित्य में प्रवेश मिला। आंचलिक साहित्य सर्जन के फलस्वरूप आंचलिक शब्दों की वृद्धि हुई। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में जिस सरल और सहज भाषा का प्रयोग किया था तथा जनमानस को अभिव्यक्ति देने का काम किया था वही चेतना उस समय के कथा साहित्य में आगे बढ़ी। इस प्रकार अब हिंदी भाषा राष्ट्रीयता से उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर विकसित होने लगी।

*Lorark dly &* बीसवीं शताब्दी के मध्य का समय भारत के इतिहास में इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता मिली। एक ओर देश का विभाजन हुआ तो दूसरी ओर सामन्तवादी और साम्रज्यवादी व्यवस्था का अंत हुआ। रियासतों और जमींदारी प्रथा को उखाड़ फेंका गया। शोषण और दमन के चक्र को समाप्त करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने महत्वपूर्ण कदम उठाए। जनसामान्य की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनीं और राष्ट्र को शिक्षा और तकनीकी दृष्टि से समृद्ध बनाने के प्रयास आरंभ हुए। औद्योगीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत नए-नए उद्योग-धंधे खुलना शुरू हुए। विदेशों से राजनैतिक संबंध स्थापित होने लगे। इस समय की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी 'भारतीय संविधान' का निर्माण। संविधान बना 1949 में पर लागू हुआ 26 जनवरी 1950 से। इस संविधान के अनुसार भारत को 'प्रभुत्व संपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य' का दर्जा मिला। लेकिन दूसरी ओर अनेक प्रकार की राजनैतिक उथल-पुथल, आर्थिक विषमता, भ्रष्टाचार, अनुशासन-हीनता, सामाजिक असुरक्षा, जातिवाद, सांप्रदायिकता, औद्योगीकरणजन्य सामाजिक बुराइयाँ, नैतिक मूल्यों का पतन आदि भी भारतीय समाज में पनपने शुरू हुए। तत्कालीन साहित्य इन सबसे प्रभावित हुए बिना तो रह नहीं सकता था। अतः स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता हुआ आगे की ओर विकसित हुआ। आलोचना के मानदंड स्थापित हुए जिससे भाषा में विश्लेषण की क्षमता का विकास हुआ।

जब हम आज़ाद हुए थे तब भारत की राजभाषा अंग्रेजी थी। होना तो यह चाहिए था कि देश के आज़ाद होते ही हिंदी को अंग्रेजी के स्थान पर ला बिठाया जाता, पर ऐसा न हो सका। हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिला 1965 में और इस समय तक देश की राजनैतिक स्थितियों में भारी परिवर्तन आ चुके थे। भारत सरकार की हिंदी भाषा को राजभाषा घोषित करने की नीति का दक्षिण भारत के प्रांतीयतावादी विचारधारा के संकुचित मन के लोगों ने विरोध किया। बहरहाल, आज संविधान में हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी एवं अन्य प्रमुख प्रांतीय भाषाओं को भी राजभाषा का दर्जा प्राप्त हो चुका है पर आज एक सत्य भारतीय मन ने अवश्य स्वीकार कर लिया है कि अंग्रेजी को आधार बनाकर इस देश को बहुत समय तक विकास पथ पर नहीं ले जाया जा सकता। हिंदी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं के विकास के साथ ही देश का भविष्य जुड़ा हुआ है। डॉ. चाटुर्ज्या ने 'भारतीय आर्य भाषा और हिंदी' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "भारत में हिंदी न केवल पारस्परिक वार्तालाप की भाषा है बल्कि विदेशों में भी भारतीयों के साथ बातचीत करने के लिए हिंदी को ही आधार बनाया जाता है।"

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली का क्षेत्र संपूर्ण भारत वर्ष तो है ही; वे देश भी है जहाँ हिंदी भाषा-भाषी लोग जा बसे हैं और अपनी अस्मिता की पहचान वे भारत और हिंदी से करते हैं। भारत में कोने-कोने तक हिंदी को प्रचारित करने में हिंदी 'सिनेमा' की भूमिका भी बड़ी महत्वपूर्ण रही है। आज यह भी एक सच्चाई है कि चाहे लोग सुदूर

दक्षिण के हों या पश्चिम के, उत्तर के हों या पूर्वांचल के, वे सब हिंदी फिल्मों को देखने में काफी रुचि लेते हैं और भाषा को समझ बोल सकते हैं। आज की हिंदी के अखिल भारतीय स्तर पर दो रूप दिखाई देते हैं – एक 'हिंदुस्तानी' का जो अंतर्प्रती स्तर पर संपर्क भाषा के रूप में मान्य है तथा आज इसके अलग-अलग प्रांतों में अलग-अलग क्षेत्रीय रूप भी खड़े हो रहे हैं। यही कारण है कि आज— 'कलकतिया हिंदी', 'बंबइया हिंदी' 'दिल्ली की हिंदी' जैसे रूपों की चर्चा की जाती है। इन रूपों का होना हिंदी भाषा के लिए कमजोरी की बात नहीं है, यह तो उसकी प्रगति एवं समृद्धि की सूचना देता है। हिंदी का दूसरा रूप है उसका साहित्यिक रूप। यह साहित्यिक रूप आज हिंदी साहित्य के विकास की लगभग दो सौ वर्षों की कहानी कह रहा है। सबसे अच्छी बात तो यह हुई है कि 'साहित्यिक हिंदी' भी अब हिंदी प्रदेशों तक सीमित नहीं रह गई है। हिंदीतर प्रांतों के प्रसिद्ध साहित्यकार सामने आ गए हैं जो हिंदी साहित्य निधि को और भी समृद्धि प्रदान कर रहे हैं। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि आज हिंदी खड़ी बोली राष्ट्रीयता से उठकर अन्तर्राष्ट्रीयता के दरवाजे खटखटा रही है।

### ckk ç'u 1

- 1) निर्देश: सही कथनों पर सही का निशान और गलत कथनों पर गलत का निशान लगाइए।
  - i) डिंगल हिंदी का वह रूप है जिसका संबंध राजस्थानी साहित्य से है।
  - ii) अमीर खुसरो की कविता की भाषा पिंगल कहलाती थी।
  - iii) खड़ी बोली के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।
  - iv) पं. युगल किशोर को हिंदी पत्रकार कला का जन्मदाता माना जाता है।
  - v) हिंदी और उर्दू दो अलग-अलग भाषाएँ हैं।
  - vi) गद्य एवं पद्य दोनों में ही खड़ी बोली का प्रयोग भारतेन्दु युग से आरंभ हो गया था।
  - vii) भारत के स्वतंत्र होते ही हिंदी भारत की राजभाषा बन गई।
- 2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
  - i) कबीर की भाषा ..... भाषा कही जाती है।
  - ii) हिंदी की सबसे पहली कहानी 'रानी केतकी की कहानी' के लेखक.....  
.....
  - iii) आधुनिक काल के आरंभ में हिंदी के विकास में चार महानुभावों – (i) मुंशी सदासुख लाल (ii) इंशा अल्ला खॉं (iii) ..... (iv) सदल मिश्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा।
  - iv) भारतेंदु का समय ..... से ..... तक है।
  - v) द्विवेदी जी ने..... पत्रिका के माध्यम से हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की।

3) मिलान कीजिए –

fgnht Hk'lk dk fodkl

ys'kd

iqrdg

- |                           |                         |
|---------------------------|-------------------------|
| 1) लल्लू जी लाल           | क) शेख मिराजी का किस्सा |
| 2) अमीर खुसरो             | ख) पत्र कौमुदी          |
| 3) मुल्लादाऊद             | ग) पृथ्वीराज रासो       |
| 4) गोरखनाथ                | घ) पहेलियाँ             |
| 5) वररुचि                 | च) सत्यार्थ प्रकाश      |
| 6) बाल मुकुंद गुप्त       | ज) शिवशंभु के चिट्ठे    |
| 7) स्वामी दयानन्द सरस्वती | झ) चंदायन               |
| 8) चंदबरदाई               | ट) प्रेम सागर           |
| 9) सदल मिश्र              | ठ) आध्यात्म रामायण      |
| 10) प्राणनाथ              | ड.) गोरखबानी            |

4) सही उत्तर पर निशान लगाइए–

i) आरंभिक हिंदी भाषा में अपभ्रंश की शब्दावली पर्याप्त मात्रा में दिखाई देती है क्योंकि :

- क) उस समय के हिंदी कवि अपभ्रंश भाषा के शब्दों का प्रयोग जानबूझ कर करते थे।
- ख) अपभ्रंश से विकसित होने के कारण आरंभिक हिंदी में अपभ्रंश के शब्दों का आना स्वाभाविक था।
- ग) अपभ्रंश भाषा सरल थी और उसके शब्दों के प्रयोग से ही साहित्य उच्चकोटि का साहित्य कहलाता था।

ii) उर्दू भाषा इसलिए विकसित हुई कि :

- क) मुस्लिम शासकों के भारत में आने के बाद तत्कालीन हिंदी भाषा में अरबी-फारसी के शब्द स्वभावतः आ गए।
- ख) मुस्लिम शासक जो बाहर से उस समय आए उर्दू भाषा बोलते थे।
- ग) हिंदी को ही मुस्लिम शासकों ने फ़ारसी लिपि में लिखवाना शुरू कर दिया।

iii) "हिन्दवी" भाषा रूप वह रूप है:

- क) जिसे 13वीं शताब्दी के समय हिंदू बोलते थे।
- ख) यह डिंगल तथा पिंगल का मिला-जुला रूप है।
- ग) यह वह रूप है जो 13वीं शताब्दी के आसपास जनसामान्य द्वारा बोला जाता था।

- iv) 'दक्खिनी हिंदी' हिंदी का वह रूप है :
- क) जो दक्षिण भारत के मुसलमानों द्वारा बोला जाता था।  
ख) हैदराबाद में बोली जाने वाली उर्दू भाषा ही "दक्खिनी हिंदी" कही गई।  
ग) जो दक्षिण भारत में मुस्लिम शासकों, व्यापारियों आदि के पहुँचने पर खड़ी बोली में दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्द आ जाने से विकसित हुआ।
- v) हिंदी साहित्य के अंतर्गत कविता लेखन में गद्य का प्रयोग:
- क) रीतिकाल से ही आरंभ हो गया था।  
ख) भारतेंदु युग में भारतेंदु की प्रेरणा से हिंदी के कवियों ने ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में कविता लिखना आरंभ किया।  
ग) द्विवेदी युग में हुआ।
- vi) खड़ी बोली गद्य का व्यवस्थित विकास इसलिए हुआ क्योंकि:
- क) अंग्रेज भारत की भाषा हिंदी से प्रेम करते थे और चाहते थे कि यह भली प्रकार से विकसित हो।  
ख) इस भाषा के माध्यम से वे अपने धार्मिक साहित्य का अनुवाद कराके प्रचार करना चाहते थे।  
ग) भारत में राज्य करने के लिए यहाँ की भाषा विकसित करना उनके लिए अनिवार्य था।
- vii) हिंदी को भारत की राजभाषा का दर्जा मिला था :
- क) गांधी जी की प्रेरणा से देश की आज़ादी के तुरंत बाद।  
ख) इसे राजभाषा का दर्जा दिलाया सरदार पटेल ने आज़ादी के दस वर्ष बाद।  
ग) देश में हिंदी के व्यापक प्रचार एवं प्रसार के कारण 1965 में।
- 5) संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।
- क) हिंदी (हिंदवी)  
ख) उर्दू  
ग) रेख्ता  
घ) दक्खिनी हिंदी

---

## 8-7 / kjkkk

---

इस इकाई में हमने देखा कि किस प्रकार हिंदी भाषा संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश से होती हुई विकसित हुई। हिंदी के प्रारंभिक रूप में इसीलिए हमें अपभ्रंश के अधिकांश शब्द एवं व्याकरणिक रूप दिखाई देते हैं। आगे चलकर हिंदी की अनेक बोलियाँ और शैलियाँ विकसित हुईं। मुस्लिम शासकों के भारत में आ जाने के बाद उसमें

अरबी-फ़ारसी शब्द आ गए और उसकी एक शैली "उर्दू" के नाम से विकसित हुई। दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्दों में आ जाने से "दक्खिनी हिंदी" की अनेक बोलियाँ विकसित हुईं।

हिंदी भाषा के विकास का इतिहास 1000 वर्षों का है जिसका अध्ययन हमने तीन चरणों – आदिकाल, मध्यकाल, तथा आधुनिक काल के अंतर्गत किया। आदिकाल का समय 1000ई. से 1500ई. तक का माना जाता है और इसी अवधि में हिंदी के अनेक रूप जैसे "डिंगल" "पिंगल" हिंदी भी विकसित हुए।

मध्यकाल जिसका समय 1500ई. से 1800ई. तक माना गया है वह समय है जब हिंदी की प्राकृत बोलियाँ विशेषकर ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली विकसित होकर सामने आती हैं तथा खड़ी बोली गद्य के विकास का सूत्रपात हमें इसी युग में दिखाई देने लगता है। "प्रणामी साहित्य" का इस दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आधुनिक काल जिसका समय 19वीं सदी से आरंभ होता है वह समय है जब हमें हिंदी साहित्य में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली का प्रयोग दिखाई देता है। गद्य की तमाम विधाएँ यहाँ विकसित होती हैं। यही नहीं 1925 के आसपास पहुँचकर हिंदी की कविता भी ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में लिखी जाने लगती है। हिंदी खड़ी बोली के विकास के आरंभिक चरण में चार महानुभावों—लल्लू जी लाल, सदासुख लाल, सदल मिश्र तथा इंशा अल्ला खाँ का महत्वपूर्ण योगदान दिखाई देता है और फिर आगे चलकर हिंदी के दो मूर्धन्य साहित्यकारों भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी की अभूतपूर्व सेवाएँ प्राप्त होती हैं जिससे खड़ी बोली एक व्यवस्थित मानक रूप ग्रहण करती है।

यही वह समय है जब आगे चलकर 1947 में भारत आज़ाद होता है और हिंदी साहित्य में तरह-तरह के मोड़ दिखाई देते हैं। 1965 में हिंदी का हिंदी सेवियों के अथक प्रयासों से राजभाषा का दर्ज़ा प्राप्त होता है। आज हिंदी सारे देश में बोली और समझी जाने वाली भाषा है। वह अनेक रूकावटों के बाद भी विभिन्न प्रदेशों की भाषाओं को अपने साथ लेकर अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर अग्रसित हो रही है।

### 8-8 cksk ç'uka ds mPrj

- 1) i) सही    ii) गलत    iii) सही    iv) सही    v) गलत  
vi) गलत    vii) गलत
- 2) i) सधुक्कड़ी    ii) इंशा अल्ला खाँ    iii) लल्लूलाल, सदल मिश्र  
iv) 1850 से 1885    v) सरस्वती
- 3) 1, ट.    2, घ.    3, झ.    4, ड.,    5, ख.    6, ज.    7, च.    8, ग.  
9, ठ.    10, क.
- 4) i) ख    ii) क    iii) ग    iv) ग    v) ग    vi) ख    vii) ग